Artistic Narration, Vol. VIII, 2017, No. 2: ISSN (P) : 0976-7444 (e) : 2395-7247Impact Factor 3.9651 (ICRJIFR)
UGC Approved Journal No. 43285

संगीत और रस

डॉ0 अनिता रानी

एसो0 प्रोफे0, संगीत सितार, श्रीमती बी0डी0 जैन गर्ल्स पी0जी0 कालेज, आगरा

Reference to this paper should be made as follows:

डॉ0 अनिता रानी,
संगीत और रस,
Artistic Narration 2017,
Vol. VIII, No.2, pp.7- 12
http://anubooks.com/
?page_id=485

सारांश

संगीत का मुख्य उद्देश्य आनंद प्राप्ति हैं। संगीत द्वारा आनंद रस की निष्पत्ति के कारण होता है। संगीत रस निष्पत्ति करने का सबसे प्रभावशाली माध्यम हैं। मानव जाति के अन्तःकरण में निवास करने वाली विशिष्ट भावनाओं के सतौगुण प्रधान परमोत्कर्षको ही शास्त्रज्ञों ने 'रस' कहा हैं। तैतरीय उपनिषद में कहा गया है, ''रसों ह्वये वायं लब्ध्वाश नदी भवति''। कला का प्राण रस हैं और कला का लक्ष्य रसानुभूति अथवा जब कोई स्वाभाविक वस्तु थोड़ी सी परिवर्तित होकर मन के अन्दर एक साधारण नवीनता उत्पन्न कर देती है, तब उसे 'रस' कहते हैं। साहित्य में नव रस माने गये हैं– श्रृंगार, हास्य, करूण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत और शांत।

विभिन्न रसों के अनुरूप स्वर, वाद्ययंत्रों के प्रयोग आदि का निर्देश भी किया गया है। भरत ने स्वर निर्देश निम्न प्रकार किया है–

सरी वीरेश्ष्द्भुते रौद्रे धा, वीभत्से भयानके।
कार्यो गनों तु करूणहास्यश्रृंगारयोमगौ।।

अतः संगीत में शब्द, स्वर, लय और ताल के सामंजस्य द्वारा विभिन्न रसों की सृष्टि की जाती है। शास्त्रीय संगीत में स्वरों के परस्पर संवाद तथा लय ताल के घेरे में बंधी हुई इनकी क्रमिक बढत संगीत को प्रभावशाली, रूचिकर व सुन्दर बनाने में उत्तरदायी होती है। सांगितिक संरचना या बंदिश केवल इसका वाह्य शरीर परन्तु स्वरों की परिपकता बड़त इसकी आत्मा होती हैं। अतः जब अनेक अलंकरणों के साथ स्वर व लय एक दूसरे में समाहित होकर एकरूप हो जाते हैं, शब्दों के माध्यम से अभिव्यक्त भाव केवल स्थायी रूप में ही सामने आते है, परन्तु स्वर लय के माध्यम से कलाकार उन शब्दों में चिन्हित सुर अर्थ का स्वयं अनुभव करके उसका रसपान रसिकों को कराता हैं।

डॉ0 अनिता रानी

संगीत का मुख्य उद्देश्य आनंद प्राप्ति हैं। संगीत द्वारा आनंद रस की निष्पत्ति के कारण होता है। प्राचीनाचार्यो ने रस सिद्धान्त पर गहन चिंतन किया और भिन्न–भिन्न विधाओं के साथ रस के सम्बन्ध का विवेचन किया। किसी भी कला के लिये यह जरूरी है कि उससे मानव हृदय में स्थित भाव जगे, और उन भावों से तत्सम्बन्धि रस की उत्पत्ति हो तभी मनुष्य आनंद की अनुभूति कर सकता हैं। इसी को सौन्दर्य बोध कहते हैं। भारतीय संस्कृति में भी सौन्दर्य का लक्ष्य बिन्दु सुन्दरता न होकर 'रस' हैं। अतः संगीत रस निष्पत्ति करने का सबसे प्रभावशाली माध्यम हैं। मानव जाति के अन्तःकरण में निवास करने वाली विशिष्ट भावनाओं के सतौगुण प्रधान परमोत्कर्षको ही शास्त्रज्ञों ने 'रस' कहा हैं। तैतरीय उपनिषद में कहा गया है, ''रसों ह्रये वायं लब्ध्वाष्ष नदी भवति''। कला का प्राण रस हैं और कला का लक्ष्य रसानुभूति अथवा जब कोई स्वाभाविक वस्तु थोड़ी सी परिवर्तित होकर मन के अन्दर एक साधारण नवीनता उत्पन्न कर देती है, तब उसे 'रस' कहते हैं। रस की सर्वप्रथम और सर्वाधिक चर्चा संस्कृत ग्रंथों तथा साहित्य में की गई है। भरत का रस सिद्धान्त ही काव्य, साहित्य नाटक कहानी संगीत आदि अन्य कलाओं पर लागू किया जाता हैं। साहित्य में नव रस माने गये हैं– श्रृंगार, हास्य, करूण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत और शांत। प्राचीन संगीतज्ञ महर्षि भरत के अनुसार प्रधान रस चार हैंः– श्रृंगार, रौद्र, वीर, वीभत्स। इन्हीं में से क्रमशः हास्य, करूण, अद्भुत और भयानक रसों की उत्पत्ति होती हैं। संगीत में कलाकार के पास केवल स्वरों की क्रमबद्ध एवं सामंजस समूह रहता है, शुष्क वर्ण रहते हैं, आलाप रहता है, और इन्हीं सीमित साधनों को अपनाकर अनुकूल, काकू, और मुद्राओं का आश्रय लेकर वह भाव की अभिव्यक्ति करता हैं। रसों के प्रमुख आधार भाव ही हैं। इसलिए कहा गया है 'स्थायीभाषाः रसमाप्नुवन्ति'' भाव ही रस को प्राप्त होते हैं। जो भाव रस तक नहीं पहुँचते उन भावों को व्यक्ति के हृदय तक पहुँचाने के लिए विभाव, अनुभाव तथा संचाारी भावों के सहयोग से रस की निष्पत्ति करते है।

भरत ने 8 स्थयाी भाव तथा उसके अनुरूप 8 रस बताए हैं। अभिनव गुप्त ने सर्वप्रथम 'शान्तरस' को स्थान देकर 'नवरसकल्पना' की। बाद के विज्ञजनों मम्मद आदि ने भी रसों की संख्या 9 मानी हैं। वे स्थायी भाव तथा उनके रस निम्न हैंः–

स्थायी भाव	रस
रति	श्रृंगार
हास	हास्य
क्रोध	रौद्र
उत्साह	वीर
भय	भयानक
जुगुप्सा	वीभस्य
विस्मय	अद्भुत
निर्वेश	शांत
शोर	करूण

संगीत एवं भाव तथा रस

संगीत तथा रस का सम्बन्ध इस युग की को ई नवीन देन नहीं है। वह सम्बन्ध बहुत प्राचीन समय से चला आ रहा है। जिस प्रकार संगीत का प्राचीनतम तथा प्राप्य ग्रंथ भरतका नाट्यशास्त्र है, उसी प्रकार संगीत एवं रस का सम्बन्ध विवेचन भी सर्वप्रथम नाट्यशास्त्र में ही उपलब्ध होता है। संगीत के इसी महत्व के कारण नाट्यशास्त्र के 28 तथा 29 वें अध्याय में संगीत सम्बन्धी विषयों केसाथ–साथ रसों का विवेचन भी किया गया है। विभिन्न रसों के अनुरूप स्वर, वाद्ययंत्रों के प्रयोग आदि का निर्देश भी किया गया है। भरत ने स्वर निर्देश निम्न प्रकार किया है–

सरी वीरेष्श्द्भुते रौद्रे धा, वीभत्से भयानके। कार्यो गनों तु करूणहास्यश्रृंगारयोमगौ।।

अर्थात्

सा, रे–वीर, रौद्र तथा अदभुत रसों के

ध–वीभस्य तथा भयानक रसों का

ग, नि–करूण रस के तथा

म, प– हास्य तथा श्रृंगार रसों के पोषक है।

वर्तमान समय में भी संगीत का अटूट सम्बन्ध भावों तथा रसों से माना जाता हैं। संगीत का प्रयोजन श्रोताओं को आनन्द देना है और इस आनन्द की चरमावस्था ही रसास्वादन है। यही आनन्द, गायन, वादन और नष्त्य की आत्मा है। पं0 भातखंडे जी ने प्रचलित हिन्दुस्तानी संगीत में रसों का समावेश स्वरों के आधार पर किया है। रागों के तीन वर्गो में रसों की स्थिति इस प्रकार बताई गयी हैः–

1.कोमल रे ध युक्त संधिप्रकाश राग–इन रागों में शांत तथा करूण रस की प्रधानता होती है। जैसेः भैरव, भैरवी, जोगिया आदि।

2 शुद्व रे ध युक्त राग–इन रागों में श्रृंगार रस की अधिकता होती है। जैसेः विलावल, गौडसांरग, देशकार आदि।

3. कोमल ग नि युक्त राज– ये राग वीररस प्रधान होते हैं। जैसे : आसावरी, मालकौंस, वागेश्री आदि।

भारतखंडे जी का यह रस विषयक मत सर्वसम्पन्न नहीं हैं। विभिन्न संगीतज्ञों में इस विषय पर मतभेद है कि कौन से राग किस रस अथवा भाव के पोषक है, परन्तु यह सभी मानते हैं कि संगीत द्वारा भावों व रसों की सृष्टि होती है।

संगीत में रसनिष्पति के आधारः–

रस संगीत की आत्मा है। उस रस के परिपाक में संगीत के अनेक घटक सहयोगी होते हैं। संगीत के अनेक घटक सहयोगी होते हैं। संगीत में भी नाद, श्रुति, स्वर, रचना, ताल, वाद्य आदि ऐसे साधन तथा तत्व है, जिनके माध्यम से रसों की सृष्टि संभव होती है।

संगीत का मूल आधार नाद ही है, अतः उसका महत्व रस निष्पति में होना स्वभाविक होता है। नाद मधुर तथा मनोहर होते पर ही सुनने की इच्छा होती है और तन्मयता आती है। नाद में वह शक्ति है जो जड़ प्रकृति को भी प्रभावित करती है। ओमकार नाथ ठाकुर ने ठीक ही कहा है,''संगीत में शब्द

के अर्थ का बोध हुए बिना ही भाव या रस की प्रतीति हो जाती है। यहां तक की शब्द हो या न हो, नाद के बल से संगीत में रस निष्पति हो जाती है। इसी से यह मानना पड़ता है कि नाद में कोई शक्ति सन्निहित है, जोकि शब्दों की वाचक शक्ति की सहायता के बिना ही अर्थाभाव या रस की प्रतीति करा देती है''। अतः यह कहना गलत न होगा कि नाद ही संगीत में रस निष्पति का मूलभूत साधन हैं।

शास्त्रकारों ने संगीत में श्रुति संख्या 22 मानी हैं। इन श्रुतियों को उनके गुणानुसार भिन्न जातियों में बांटा गया था। जाति गायन काल में ये श्रुतियां ही रस निष्पति का साधन मानी जाती थी, उनके नामः दीप्ता, आयता, मध्या, मृदु, तथा करूणा थे। अहोवल ने इसका विस्तृत वर्णन किया है। इन जातियों में रसों की निष्पति निम्न प्रकार से मानी गयी हैः

श्रुति की जाति	**रस**
दीप्ता	वीर, अद्भुत तथा रोद्र रस
आयता	हास्त रस
मध्या	वीभारस, भयानक, हास्यव्यंग, श्रषंगार, वियोग रस
मष्दु	श्रृंगार रस
करूणा	दैन्य तथा करूण रस

आज हम श्रुतियों का सम्बन्ध उपरोक्त प्रकार से रसों से नहीं जोड़ते तथापि श्रुतियां रस से सम्बन्धित हैं, यह तो मानना ही पड़ता है। जैसेः दरवारी के ग का आंदोलन। जब हम कहते है दरबारी का ग नीचा है, इसका अर्थ है किसी श्रुति विशेष का प्रयोग उसके आन्दोलन में है और यही आन्दोलन उसे गाम्भीर्य प्रदान करता है। भैरव का रे रामकली या कालीगंडा के रे से भिन्न है, जो करूण रस पैदा करता है, अतः यह कोमल रे ही नहीं है वरन् उसमें कुछ और ही है, वह है श्रुति प्रयोग।

संगीत का शरीर अथवा व्यक्तित्व ही स्वरों के तान–बाने में नीहित हैं। अतः प्राचीन समय से ही स्वरों का रस से सम्बंध मान्य रहा है। भरत से लेकर भातखंडे तक सभी नेसमयानुसार स्वरों से सम्बन्धित भाव तथा उनसे निष्पदित रसों का वर्णन किया है। प्राचीन शास्त्रकारों ने तो स्वर काआवश्यक गुण अथवा तत्व उसमें रंजकता होना माना है।

सारंगदेव के अनुसार–

भावी यं स्तिग्घों।

स्वयं सुशोभित हो तथा रंजन करने आनन्द देने में में समर्थ हो, वह स्वर है। स्वर के अनेक रूपों द्वारा रस प्रक्रिया संभव होती है। स्वर के बादी संवादी रूप द्वारा रस की अनुभूति होती हैं स्वर के विविध प्रस्तुतीकरण के तरीके जैसे गगक, मी कण, खटका, आन्दोलन आदि, स्वरों की संख्यानुकूल जाति; सम्पूर्ण, पाडव, तथा औडव स्वर के सप्तक, तार, मध्य तथा मंद्र आदि सभी भेद रसों को प्रभावित करते है। इनमें परिवर्तन द्वारा भाव अथवा रस में भी परिवर्तन होता है। स्वरों के अल्पत्व, बहुत्व तथा बादी संवादी से राग बदलते तथा साथ ही रस बदल जाता है। अतः संगीत में रस को नियंत्रित करने वाला प्रमुख घटक स्वर है।

राग

उन स्वरों से युक्त होने के कारण, उस राग विशेष का वही रस माना जाता है। जैसे कोमल रे, ध करूण रस के पोषक हैं तो इनसे युक्त भैरव, जोगिया आदि करूणरसप्रधान राग माने जाते हैं। ग नि का कोमल होना श्रंगार रससूचक है तो काफी, बागेश्री, धमाज आदि श्रृंगार रस प्रधान माने जाते हैं। राग रसनिष्पति का साधन है, यह सर्वसम्मति से मान्य है। भारतीय संगीत चूंकि रागप्रधान संगीत है, इसलिए वाद्य संगीत ही अथवा कण्ठ संगीत भाव और रस का आधार राग ही होते हैं। यथा 'रजकों जन चित्तानाम् स रागकवितो बुधैः।'' अतः राग में यदि चित्त को आनन्दित अथवा रसानुभूति कराने की क्षमता नहीं है तो वह राग नहीं।

प्रबन्ध

संगीत में ध्रुवपद, धमार, ख्याल (बड़ा तथा छोटा), तराना, ठुमरी आदि प्रबन्ध रचनाएँ हैं, जो अपनी शब्द रचना, गठन द्वारा अधिकांशतः वीर, करूण तथा शान्त रा, घमार द्वारा श्रृंगार रस की उत्पति होती है। ध्रुवपद द्वारा अधिकाशतः वीर, करूण तथा शांत रस, धमार द्वारा श्रृंगार रस की निष्पत्ति होती है। यदि ख्याल तथा छोटे ख्याल द्वारा शब्दानुकूल अथवा रागानुकूल रसोत्पत्ति संभव होती है।टप्पा, तराना, आदि से श्रृंगार, हास्य व रौद्र रस की सृष्टि होती है। ठुमरी, दादरा, चैती आदि से श्रृंगार (संयोग, वियोग, रूठना, मनाना) भावों व रस–निष्पत्ति के लिए श्रेष्ठ कृति है। इसी प्रकार वाद्यों में जोड़, करूण व शांत रस, विलम्बित व द्रुत गत श्रृंगार रस तथा झाला रौद्र तथा अद्‌भुत रस के पोषक हैं। अतः सिद्ध है कि रचना भी रसोत्पति में एक महत्वपूर्ण घटक है।

वाद्य

वाद्य अपनी आवाज के आधार पर विभिन्न रसों की निष्पत्ति करते हैं। मोटी आवाज हमेशा गाम्भीर्य पैदा करती है, चाहे वह पुरूष की हो या किसी वाद्य की। इसलिए मियॉमल्हार, दरबारी, काफ्ड़ा अथवा भारवा आदि रागों की अवतारणा जितनी स्वभाविक पुरूष कण्ठ से होती है, उतनी स्त्रीकण्ठ से नहीं। इसी प्रकार वाद्यों में भी भारी (मोटी) आवाज वाले वाद्य (बड़ी बासुंरी), वीणा, सारंगी, वायलिन आदि शांत, करूण व गम्भीर वातावरण व रस पैदा करते हैं। दूसरी ओर पतली आवाज वाले वाद्य जैसे सितार, मुरली (छोटी बासुंरी), शहनाई आदि श्रृंगार रस में सहायक होते हैं। श्रीकृष्ण बांसुरी से रतिभाव ही पैदा करते थे, इसी प्रकार विवाह आदि मांगलिक व श्रृंगारिक वातावरण में शहनाई प्रयोग में लायी जाती रही है। इसी प्रकार कुछ वाद्य जैसे मंजीरे, करताल, घन्टे–घड़ियाल आदि भक्ति रस निष्पादित करते हैं। संगीत में ताल वाद्यों का भी रस –निष्पत्ति में महत्वपूर्ण स्थान है। मृदंग, भांगड़ा, ड्रम, आदि वाद्य वीर तथा रौद्र रस के सहायक हैं तो ढोलक, तबला, ढप, खंजरी आदि श्रृंगार रस को पोषित करते हैं। वाद्यों के साथ–साथ इन पर बनजे वाली तालों व लय का भी रस पर प्रभाव पड़ता है। विलम्बित लय के ठेके–तिलवाड़ा इकताल, झूमरा, आदि करूण व शांत रस रस को प्रधानता लिए होते हैं। खुले बोलों के ठेके चौताल, आड़ाचौताल, मूलताल आदि वीर रस अथवा भक्ति रस प्लावित करते हैं। त्रिताल, झपताल, कहरवा, दादरा, द्रुत इकताल आदि तालें मध्यलययुक्त होती हैं तथा श्रंगार रस में सहायक होती हैं।

अतः संगीत में शब्द, स्वर, लय और ताल के सामंजस्य द्वारा विभिन्न रसों की सृष्टि की जाती है। शास्त्रीय संगीत में स्वरों के परस्पर संवाद तथा लय ताल के घेरे में बंधी हुई इनकी क्रमिक बढत संगीत को प्रभावशाली, रूचिकर व सुन्दर बनाने में उत्तरदायी होती है। सांगितिक संरचना या बंदिश केवल इसका वाह्म शरीर परन्तु स्वरों की परिपकता बड़त इसकी आत्मा होती हैं। अतः जब अनेक अलंकरणों के साथ स्वर व लय एक दूसरे में समाहित होकर एकरूप हो जाते हैं, शब्दों के माध्यम से अभिव्यक्त भाव केवल स्थायी रूप में ही सामने आते है, परन्तु स्वर लय के माध्यम से कलाकार उन शब्दों में चिन्हित सुर अर्थ का स्वयं अनुभव करके उसका रसपान रसिकों को कराता हैं।

संदर्भ सूचीं

1. कला एवं साहित्य – प्रवृत्ति और परम्परा– प्रो0 विश्वनाथ प्रसाद
2. काव्य और कला– सिद्वान्त और अध्ययन– बाबू गुलाबराय लक्ष्मीनारायण गर्ग
3. कला अंक (सम्मेलन पत्रिका)– पं0 भोलानाथ तिवारी
4. कला दर्शन– डॉ हरद्वारी लाल शर्मा
5. स्वतंत्र कला शास्त्र– कान्तिचन्द्र पाण्डेय
6. कला के मूल तत्व– चिरंजीलाल
7. भारतीय कला परिचय –कुसुमदास
8. संगीत मासिक पत्रिका
9. भारतीय संगीत का सौन्दर्य विधान– मधुरलता भटनागर